ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-3* June- 2021
Anthology : The Research

ग्रामीण समाज में जाति प्रथा का महत्व
Importance of Caste System in Rural Society

Paper Submission: 02/06/2021, Date of Acceptance: 15/06/2021, Date of Publication: 24/06/2021

जितेन्द्र कुमार अहिरवाल
अतिथि विद्वान,
समाजशास्त्र विभाग,
शास. महावि. सिलवानी
रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में रहने के नाते ऐसा नहीं होता है कि वह सामाजिक नियमों से प्रभावित हुये बगैर रह सकता हो अतः भारतीय समाज और विशेषतः ग्रामीण समाज प्रमुख रूप से जाति प्रधान समाज है। यहां सामाजिक स्तरीकरण प्रमुख आधार जाति प्रथा ही है। इस समय हमें देश में अनगिनत जातियाँ तथा उपजातियाँ है। प्रत्येक जाति की अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं। वास्तव में जाति व्यवस्था केवल भारतीय समाज की उपज एवं अनुपम संस्था है। आज हमारा समाज लगभग तीन हजार जातियों एवं उपजातियों में विभाजित है और यह प्रथा केवल हिन्दुओं तक ही सीमित न होकर मुसलमान तथा ईसाइयों तक में भी कुछ सीमा तक प्रवेश कर गई है।

जाति व्यवस्था का इतिहास हजारो वर्ष का है। वास्तव में भारतीय समाज में जाति प्रथा द्वारा अनेक कार्य सम्पन्न होते आये है और आज भी हो रहे है। अनेक दोषो के होते हुये भी आज जाति प्रथा का महत्व प्राचीनकाल से अब तक ग्रामीण एवं नगरीय भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विशेष भूमिका निभाती रही है। हमारे सामाजिक जीवन में जाति प्रथा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करना।
मैकावर तथा पेज के अनुसार
''किसी व्यक्ति की जाति जीवन में उसके कार्य को निश्चित करती है।''[1]

जाति व्यवस्था में समय–समय पर परिवर्तन होते रहे है। प्रारंभ में सिर्फ वर्ण व्यवस्था ही समाज में विद्यमान थी। जैन एवं बौद्ध धर्मो के विकास के परिणामस्वरूप ब्राह्मणों की स्थिति में गिरावट आई यह धर्म, कर्म के सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही वर्ण विभाजन के कारण जाति व्यवस्था अस्तित्व में आई। जाति व्यवस्था में भी शूद्रों की स्थिति अत्यन्त निम्न एवं दयनीय थी। 19वीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से जाति प्रथा को समाप्त करने के प्रयास किये एवं अनेक ऐसे अधिनियम पारित कराए जिनमें जाति व्यवस्था का स्वरूप शिथिल हुआ।

Man is a social animal, living in society it does not happen that he can live without being influenced by social rules, so Indian society and especially rural society is mainly caste based society. Here the main basis of social stratification is the caste system. At present we have innumerable castes and sub-castes in the country. Each caste has its own characteristics. In fact, the caste system is only a product and a unique institution of Indian society. Today our society is divided into about three thousand castes and sub-castes and this practice has not limited to Hindus only but has also penetrated to some extent even among Muslims and Christians.

The history of the caste system goes back thousands of years. In fact, in Indian society, many tasks have been accomplished by the caste system and are being done even today. Despite many defects, today the importance of caste system has been playing a special role in rural and urban Indian social system since ancient times. The most important function of the caste system in our social life is to determine the social status of individuals.

Changes have been taking place in the caste system from time to time. Initially only the Varna system existed in the society. As a result of the development of Jainism and Buddhism, the position of Brahmins declined. Even in the caste system, the position of Shudras was very low and pathetic.

In the 19th century, social reformers made efforts to end the caste system through social movements and passed many such acts in which the nature of the caste system was relaxed.

मुख्य शब्द : जाति, व्यवस्था, प्रथा, समाज शिथिल, उपज, अनुपम, परिवर्तन, छुआछूत, भेदभाव इत्यादि।
Caste, System, Custom, Society Loose, Yield, Unique, Change, Untouchability, Discrimination Etc.

प्रस्तावना

यद्यपि जाति व्यवस्था व्यक्ति समुदाय तथा समाज की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी व्यवस्था है, परन्तु समय और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ–साथ जाति प्रथा के स्वरूप में अनेक परिवर्तन आ गये है तथा उसके अनेक दोष भी उभर कर सामने आने लगे है।

''देश में जाति व्यवस्था की शुरूआत सबसे पहले 1500 ईसा पूर्व आर्यों के आने से हुई थी। आर्यों ने सभी लोगो के ऊपर नियन्त्रण रखने के लिये और जाति व्यवस्था अच्छे से चलाने के लिये ही थी।''[4]

जाति का अर्थ

'जाति' शब्द का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'कास्ट' (Caste) है। अंग्रेजी के 'कास्ट' शब्द का जन्म पुर्तगाली भाषा के 'कास्टा' (Casta) से हुआ है, जिसका अर्थ है नस्ल, प्रजाति (Race) या प्रजातीय भेद। कास्ट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1563 में ग्रेसिया डी ओरटा ने यह लिखकर किया था कि ''कोई अपने पिता के व्यवसाय को नहीं छोड़ता।'' जाति का यह शाब्दिक अर्थ है। जाति का वास्तविक अर्थ सदस्यता जन्म से निर्धारित होती है।''

जाति की परिभाषाएँ

केतकर के अनुसार–''जाति दो विशेषताओं वाला सामाजिक समूह है–(1) सदस्यता उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहती है जो सदस्यों से उत्पन्न होते है और इस तरह उत्पन्न सभी व्यक्ति उसमें शामिल रहते हैं तथा (2)सदस्यों पर एक अनुलंघनीय सामाजिक (Inexorable social) नियम द्वारा जाति के बाहर विवाह करने पर प्रतिबंध रहता है।[5]

मजूमदार एवं मदान–''जाति एक बन्द वर्ग है।''[6]

इ.ए. गेटे के अनुसार–''यह एक अन्तर्विवाही समूह है या ऐसे समूह का संकलन है जिसका सामान्य नाम है, एक परम्परागत व्यवसाय है। एक ही स्त्रोत से उत्पत्ति का दावा करते हैं और एक सजातीय समुदाय का निर्माण करने वाले समझे जाते है।''[7]

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार–''जब स्थिति पूर्ण रूप से पूर्व निश्चित हो, ताकि मनुष्य बिना किसी परिवर्तन की आशा के अपना भाग्य लेकर उत्पन्न होते हो तब वर्ग जाति का रुप ले लेता है।''[8]

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि जाति व्यवस्था एक जटिल एवं बहुपक्षीय अवधारणा है। अतः किसी एक संक्षिप्त परिभाषा द्वारा इसका पूर्ण विवेचन करना प्रायः संभव नहीं है। इसीलिए विद्वानों ने इसे परिभाषित करने में इसके लक्षणों का सहारा लिया है।

जाति व्यवस्था की विशेषताएँ

जाति प्रथा की परिभाषाओं से ही इसकी प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती है। एन.के. दत्त ने जाति प्रथा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार बताई है–

1. जाति के सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकते अर्थात् यह अन्तर्विवाही समुदाय होता है।
2. प्रत्येक जाति में अन्य जातियों के साथ खानपान से संबंधित कुछ प्रतिबन्ध होते है।
3. प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय होता है।
4. सभी जातियों और उपजातियों में ऊँच–नीच की व्यवस्था अथवा संस्तरण पाया जाता है जिसमें ब्राह्मण जाति का स्थान सर्वोपरि है और सभी स्थानों पर मान्यता प्राप्त है।
5. जाति का निर्धारण जन्म से ही हो जाता है। केवल जाति के नियमों के विपरीत कार्य करने पर व्यक्ति जाति से बाहर निकाल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त एक जाति से दूसरी जाति में जाना असंभव है।
6. सम्पूर्ण जाति व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर निर्भर है।

डॉ. जी. एस. घूरिए ने भी जाति के छः प्रमुख लक्षण बताये हैं जो निम्न है–

1. जाति प्रथा समाज का खण्डात्मक विभाजन है।
2. जाति प्रथा में भोजन व सामाजिक सहवास पर नियंत्रण पाया जाता है।
3. जाति व्यवस्था में विभिन्न जातियों (उपविभागों) की नागरिक तथा धार्मिक योग्यताएँ व विशेषाधिकार भिन्न–भिन्न है।
4. जाति प्रथा में निर्बाध व्यवसाय के चुनाव का अभाव पाया जाता है।
5. जाति प्रथा में विवाह पर नियंत्रण पाया जाता है।[9]

किंग्सले डेविस ने जाति प्रथा के निम्नलिखित सात प्रमुख लक्षण बताये हैं–

1. जाति की सदस्यता वंशानुगत होती है अर्थात् जन्म से ही बच्चा अपने माता–पिता की जाति को ग्रहण कर लेता है।
2. जाति की सदस्यता जन्मजात रहती है अर्थात् कोई व्यक्ति किसी भी प्रयास द्वारा अपनी जाति नहीं बदल सकता है।
3. जाति अन्तर्विवाही समूह है अर्थात् जीवनसाथी का चुनाव अपनी ही जाति में होता है।
4. जाति अपने सदस्यों पर दूसरे समूहों के साथ खानपान, सामाजिक सहवास, सहयोग, सम्पर्क की स्थापना आदि पर प्रतिबंध लगाती है।
5. प्रत्येक जाति का एक नाम होता है, जो कि जातीय चेतना को बल देता है।
6. प्रत्येक जाति का परम्परागत व्यवसाय होता है। व्यवसाय के अतिरिक्त सामान्य जनजातीय अथवा प्रजातीय संबंधों विश्वासों, सामान्य धार्मिक कृत्यों अथवा किन्ही अन्य विशेषताओं द्वारा जाति संगठित होती है।
7. प्रत्येक जाति के बीच श्रेष्ठता तथा निम्नता की भावना पाई जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह पता चल जाता है कि जाति प्रथा की अनेक विशेषताएँ है। जाति की विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–(अ) संरचानात्मक विशेषताएँ (जो कि जाति व्यवस्था से संबंधित है) तथा (ब) संस्थागत विशेषताएँ (जो कि जाति व्यवस्था के नियन्त्रणों और नियमों को स्पष्ट करती है।)[10]

जाति प्रथा की संरचनात्मक एवं संस्थागत विशेषताएँ

समाज का खंडात्मक विभाजन

जाति प्रथा के कारण भारत अनेक खण्डों में विभाजित हो गया तथा प्रत्येक खण्ड की प्रस्थिति एवं भूमिका सुनिश्चित कर दी गई है।

संस्तरण

जाति व्यवस्था ऊँच–नीच की व्यवस्था है अर्थात् विभिन्न जातियों में संस्तरण पाया जाता है तथा प्रत्येक जाति की प्रस्थिति अन्यों से ऊँची या नीची है। कुछ जातियों में परस्पर दूरी इतनी कम है कि उनमें ऊँच–नीच कर पाना एक कठिन कार्य है।

जन्म से निर्धारण

जाति की सदस्यता जन्म द्वारा निर्धारित होती है अर्थात् व्यक्ति जन्म से ही जाति विशेष की सदस्यता ग्रहण कर लेता है जो कि जीवन भर रहती है तथा किसी भी कार्य द्वारा वह अपनी जाति की सदस्यता बदल नहीं सकता है।

खानपान तथा सामाजिक सहवास पर प्रतिबंध

प्रत्येक जाति अपने सदस्यों पर अन्य जातियों के लोगों के साथ खानपान तथा सामाजिक सहवास पर नियंत्रण लगाती है और इन नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है। गो–मांस भक्षण लगभग सभी जातियों में निःकृष्ट समझा जाता है। शाकाहारी भोजन तथा मद्यपान निषेध ऊँची जातियों के भक्षण माने जाते है। कौन जाति, किस जाति के हाथ से भोजन ग्रहण कर सकती है और किससे नहीं, इसके भी नियम है।

अपनी ही जाति में विवाह को मान्यता अथवा अन्तर्विवाह

जाति का एक प्रमुख लक्षण अन्तर्विवाह है अर्थात् प्रत्येक जाति अपने सदस्यों को अपनी ही जाति में विवाह करने की अनुमति देती है। एक जाति की उपजातियाँ भी अन्तर्विवाह के नियमों का पालन करती है। अनेक जातियों की उत्पत्ति अन्तर्विवाह के नियमों को तोड़ने से हुई है।

परम्परागत पेशा

प्रत्येक जाति का एक निश्चित परम्परागत पेशा होता है तथा जाति के सभी सदस्य इसी पेशे को अपनाते है। वह पेशा पैतृकता द्वारा ही अपानाया जाता है तथा इसे छोड़ना उचित नहीं माना जाता है। जाति का अपने पेशे पर एकाधिकार रहता है। जैसे–सुनार, लुहार, नाई, जुलाहा तथा धोबी आदि।

आर्थिक व सामाजिक निर्योग्यताएँ एवं विशेषाधिकार

जातीय संस्तरण के अनुसार इसके साथ धार्मिक व सामाजिक निर्योग्यताएँ व विशेषाधिकार भी जुड़े हुए थे। निम्न जातियों, विशेष रुप से अछूतों तथा जनजातियों को अनेक निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ता था। वे सार्वजनिक स्थानों से पानी नहीं ले सकती थीं, उसका प्रयोग नहीं कर सकती थीं, उनका निवास स्थान गाँव से बाहर होता था तथा कहीं–कहीं तो उनके बाहर निकलने का समय भी निश्चित कर दिया जाता था। दूसरी ओर उच्च जातियों को अनेक विशेषाधिकार मिले हुए थे।

आर्थिक असमानता

जाति व्यवस्था में केवल सांस्कृतिक दृष्टि से ही ऊँच–नीच नहीं पायी जाती है, अपितु यह आर्थिक असमानता की भी व्यवस्था रही है। उच्च जातियों की आर्थिक स्थिति भी उच्च रही तथा इन्हीं का अधिकांश भूमि पर अधिकार रहा है। दूसरी ओर निम्न जातियों का आर्थिक स्तर भी निम्न रहा है।

क्षेत्रीय प्रसार

सामान्यतः एक जाति एक विशेष क्षेत्र में ही रहती है। जाति का आवासीय एवं भाषाई क्षेत्र प्रायः समान होता है। एक जाति का क्षेत्रीय आधार पर संकेन्द्रण ''प्रभु जाति'' की उपस्थिति का भी महत्वपूर्ण कारक है।

प्रथा, वस्त्र–धारण एवं बोलचाल में भेद–एम.एन.श्रीनिवास लिखते है कि ''प्रत्येक जाति की अपनी संस्कृति है जो लगभग स्वशासित है, वस्त्रों में, भाषा, शिष्टाचारों, संस्कारों और जीवन के ढंगो में अन्तर है।'' नीची जातियों को ऊँची जातियों के समान वस्त्र धारण करना भी निषिद्ध था।

जाति व्यवस्था का महत्व

जाति व्यवस्था का इतिहास हजारों वर्ष का है। वास्तव में भारतीय समाज में जाति प्रथा द्वारा अनेक कार्य सम्पन्न होते आये है और आज भी हो रहे है। अनेक दोषों के होते हुये भी आज जाति प्रथा का महत्व किसी न किसी रूप में बना हुआ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जाति प्रथा प्राचीनकाल से अब तक ग्रामीण एवं नगरीय भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विशेष भूमिका निभाती रही है। हमारे सामाजिक जीवन में जाति प्रथा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करना।

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार, ''किसी व्यक्ति की जाति जीवन में उसके कार्य को निश्चित करती है। वह केवल यही निश्चित नहीं करती कि वह क्या करेगा, वरन् उसकी दैनिक चर्या को भी निश्चित करती है।''[11]

यहाँ हम जाति द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे–

मानसिक सुरक्षा प्रदान करना

जाति व्यवस्था अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है। यह एक ऐसा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण प्रस्तुत करती है जिसमें सभी को पता होता है कि उनकी स्थिति क्या है तथाा उन्हें क्या करना है? इससे मानसिक स्थिरता में वृद्धि होती है। मानसिक सुरक्षा पारिवारिक संगठन पर निर्भर करती है। इस प्रकार जाति व्यवस्था मानसिक संघर्ष से बचाकर सुरक्षा प्रदान करती है। **हट्टन** के अनुसार,''जाति व्यवस्था से समाज के सभी कार्य सुचारु रूप से चलते है। विभिन्न जातियों के सदस्य इन कार्यो को धार्मिक कर्त्तव्य समझकर करते है। सभी व्यक्ति यह जानते है कि पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार इस जन्म में उन्हें अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार समाज की सेवा करती है।''

सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना

जाति प्रथा अपने सदस्यों को हर प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है। जब व्यक्ति असहाय होता है या किसी कठिनाई मे फँस जाता है तो जाति के समस्त सदस्य किसी न किसी रूप में उसकी सहायता करते है। व्यक्ति सोचता है कि वह अकेला नहीं है, उसकी जाति के अन्य लोग भी उसके साथ है। किंग्सले डेविस के अनुसार, ''जाति व्यवस्था के अन्तर्गत प्रदत्त पदों की व्यवस्था व्यक्ति में सुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है,

जो कि अर्जित पदों की स्थिति में किसी प्रकार भी संभव नहीं है।''

व्यवहारों पर नियंत्रण

जातीय नियमों का उल्लंघन करने पर सदस्यों को प्रताड़ित किया जाता है, निन्दा की जाती है और रोटी–बेटी का संबंध भी तोड़ा जा सकता है। इस प्रकार जाति व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक स्थायी वातावरण बनाये रखती है जिससे जातीय सदस्यों के व्यवहार को एक निश्चित मापदण्ड बनाये रखने में मद्द मिलती है। सम्भवतया इसीलिए मजूमदार और मदान ने ठीक ही कहा है, ''संक्षेप में, जाति व्यक्ति को प्रतिरक्षा की मुख्य व्यवस्था है क्योंकि यह एक स्थायी वातावरण के अन्तर्गत व्यक्ति को सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है, जो कि परिवर्तनशील क्षमताओं पर आधारित नहीं है।''

सामाजिक परिस्थिति का निर्धारण

जाति व्यवस्था द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही एक विशेष सामाजिक स्थिति प्रदान की जाती है। व्यक्ति की समृद्धि और निर्धनता, उसकी सफलताओं और असफलताओं पर कोई ध्यान दिए बिना जाति प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी सामाजिक स्थिति प्रदान करती है जिससे व्यक्ति का जीवन पूर्णतया संगठित रह सके। एक बार यह स्थिति मिल जाने पर जाति के द्वारा इसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की अनुमति नहीं दी जाती है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति के जीवन में विघटन की दशा कठिनता से ही उत्पन्न हो पाती है।

व्यवसायों का निर्धारण

जाति व्यवस्था का एक अन्य कार्य व्यक्ति के व्यवसाय को निर्धारित करना है। समाजीकरण के एक भाग के रूप में ही बच्चे अपने पिता के व्यवसाय को करना सीख जाते थे। अतः जाति, तकनीकी प्रशिक्षण देने का कार्य करती रही। प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय था जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही था। इससे निश्चित जाति समूहों को आर्थिक सुरक्षा भी प्राप्त होती है।

जीवनसाथी के चुनाव में सहायक

जाति व्यवस्था समाज में व्यक्ति को जीवनसाथी का चयन करने में सहायता प्रदान करती है। जाति सदस्यों पर वैवाहिक प्रतिबंध लगाती है तथा उनको इन नियमों के अंतर्गत ही विचार करना होता है। सामान्यतः जीवनसाथी का चयन अपनी ही जाति में करना पड़ता है। जाति में अन्तर्विवाह के नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है। कोई भी सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकता है।

धार्मिक सुरक्षा

श्री देसाई के अनुसार, ''यह जाति ही है जो जनता के धार्मिक जीवन में अपनी स्थिति को निश्चित करती है।'' प्रत्येक जाति के देवता, धार्मिक कृत्य तथा संस्कार होते है जिन्हें जाति के सदस्य विशेष श्रद्धा और प्रेम की दृष्टि से देखते है तथा उनकी जी जान से रक्षा करते है।

समाज में स्थिरता

हमारे समाज में आज जो स्थिरता दिखाई देती है उसका मूल कारण जाति व्यवस्था है। जाति प्रथा के कारण भारतीय सामाजिक ढाँचा अपरिवर्तनशील है; और जब सामाजिक ढाँचा अपरिवर्तनशील होता है तो उसमें स्थिरता होती है। व्यक्ति का स्तर, जाविका तथा पद जाति व्यवस्था द्वारा निश्चित रहता है। अतः समाज में स्थिरता बनी रहती है।

संस्कृति का हस्तांतरण

प्रत्येक जाति की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है। इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक जाति में बच्चों को शिक्षा देने, व्यवहार करने, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करने तथा व्यक्तित्व का विकास करने से संबंधित कुछ पृथक विशेषताएँ अवश्य पायी जाती है। जाति व्यवस्था के कारण ये सभी विशेषताएँ एक पीढ़े से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है। सभी सदस्य जन्म से ही बड़े व्यक्तियों के आचार–विचार तथा कार्य के तरीकों को देखकर अपनी संस्कृति के अनुसार व्यवहार करना सीख लेते हैं। इस प्रकार समाज में संस्कृति की रक्षा ही नहीं होती बल्कि ये सांस्कृतिक विशेषताएँ सदैव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लिए हस्तांतरित होती रहती है।

रक्त की शुद्धता

जाति प्रथा द्वारा रक्त की शुद्धता में सहायता मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति में विवाह करता है, अतः रक्त की शुद्धता बनी रहती है, रक्त का मिश्रण नहीं हो पाता। डॉ. मजूमदार के अनुसार, ''एक ओर ब्राह्मणों ने और दूसरी ओर जंगलों में रहने वाले कबीलों ने अपने रक्त को शुद्ध बनाये रखा। यदि विवाह पर भी रोकथाम न होती तो यहाँ नस्लों को मिश्रण बहुत ही हो गया होता।

व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि

जाति व्यवस्था के कारण व्यक्ति जन्म से ही अपने व्यवसाय में लग जाता है और निपुणता प्राप्त कर लेता है। इस विषय में एक विद्वान ने लिखा है, कार्यकुशलता में वृद्धि जाति प्रथा द्वारा हुई है। एक चर्मकार का जूता बनाना जितना अच्छा जान सकता है, उतना अन्य कोई नहीं जान सकता, क्योंकि बचपन से ही वह यही कार्य देखता है। लुहार के पुत्र को अच्छी तरह ज्ञात रहता है कि लोहा कितना गर्म करे पीटा जाना चाहिए। इस प्रकार व्यापारी का पुत्र व्यापार की बातें अधिक शीघ्रतापूर्वक समझ जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था व्यावसायिक प्रशिक्षण का केन्द्र भी है।

परस्पर प्रेम–भावना का विकास

जाति व्यवस्था ने अपने सदस्यों में प्रेम–भावना का विकास भी किया। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति वालों के प्रति प्रेम और सहयोग का भाव रखता है। आवश्यकता पड़ने पर वह अपनी जाति के लिए तन–मन–धन से सहायता भी करता है। ये भावनाएँ जाति के सदस्यों में प्रेम की भावना का विकास करती हैं तथा सामाजिक एकता को प्रोत्साहन देती है।

समाजवादी शिक्षा

जाति व्यवस्था अपने सदस्यों को मिलने वाली शिक्षा के स्वरुप का भी निर्धारण करती है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों की शिक्षा का आधार धर्म होगा तथा वैश्यों को सम्पूर्ण शिक्षा व्यावसायिक आधार पर दी जायेगी। इस प्रकार शिल्पकला तथा दस्तकारी के ज्ञान को भी जाति व्यवस्था के आधार पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करना संभव हो सका।

व्यावसायिक संघर्ष की समाप्ति

जाति व्यवस्था के कारण व्यावसायिक संघर्ष के अवसर नहीं आते। इस व्यवस्था के कारण प्रत्येक जाति के कार्य निश्चित हो गये थे, अतः परस्पर प्रतिस्पर्द्धा का अन्त हो गया।

श्रम विभाजन

जाति प्रथा की संरचना ने श्रम विभाजन का आदर्श स्वभाविक रूप में प्रस्तुत किया, जिससे विशेषीकरण को प्रोत्साहन मिला। प्रत्येक जाति का व्यक्ति यह ध्यान रखता है कि पूर्व जन्म के आधार पर इस जन्म में जाति व व्यवसाय विशेष प्राप्त हुआ है। यदि उसने ठीक प्रकार से किया तो अगले जन्म में उच्च जाति मिलेगी। इस धारणा के आधार पर वह अपने निर्धारित व्यवसाय को सन्तोष और निष्ठा के साथ करता है।

वर्गीय संघर्ष की समाप्ति

जाति प्रथा ने वर्गीय संघर्ष को समाप्त कर दिया है। इस व्यवस्था में कर्म को प्रमुखता प्रदान की गई और कहा गया कि ऊँची जाति की प्राप्ति संघर्ष के द्वारा संभव नहीं है, वरन् उत्तम कर्मों के द्वारा आगामी जन्म में ही प्राप्त होती है। हिन्दू समाज में वैश्य व शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति शारीरिक कार्य करते है, जबकि ब्राह्मण द्वारा बौद्धिक व क्षत्रिण द्वारा शासन संबंधी कार्य सम्पन्न करने की प्राचीन धारणा रही है। यदि जन्म से ही व्यक्तियों का सामाजिक स्थान निश्चित नहीं होता तो संभव था कि निम्न जाति के व्यक्ति उच्च जाति में आने का प्रयत्न करते और प्रयत्नों के परिणामस्वरूप वर्गीय संघर्ष छिड़ते।

अध्ययन के उद्देश्य

भारत को विविध या बहुआयामी भाषा भाषी क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। जहां पर अनेक रीति रिवाज रहन–सहन आचार–विचार सब कुछ अलग–अलग होते हुये भी अनेकता में एकता की भावना निहित है। अनेक सम्प्रदाय अनेक जातियाँ भारत में निवासरत् हैं और भारत की लगभग 68ः आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत् है।

''प्राचीन काल से ही हमारे देश में जाति प्रथा प्रचलित रही है और समाज और राजनीतिक व्यवस्था पर उनकी मजबूत पकड़ बनी हुई है। लोगों को वर्ग में चार अलग–अलग वर्गों में विभाजित किया गया है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र–ऐसा कहा जाता है कि आर्यो ने उस समय स्थानीय आबादी को नियन्त्रित करने के लिये इस प्रणाली की शुरुआत की थी।''[2]

''जाति प्रथा हिन्दू समाज की एक प्रमुख विशेषता है। प्राचीन समय पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि इस प्रथा का लोगो के सामाजिक, आर्थिक जीवन पर विशेष प्रभाव रहा है।''[3]

''ग्रामीण समाज में जाति प्रथा का महत्व'' शीर्षक में मैंने भारतीय समाज और ग्रामीण समाज प्रमुख रुप से जाति प्रधान समाज है। जाति की परिभाषा जाति व्यवस्था जाति की विशेषताएँ जाति व्यवस्था के महत्व को मैंने बिन्दुवार वर्णित किया है। वर्तमान परिवेश में जाति प्रथा के गुण एवं दोषों को भी शोध पत्र में शामिल किया है। शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण समाज में जाति प्रथा का महत्व तो है ही साथ ही अब प्रश्न यह है कि जाति प्रथा यदि हितकर है तो इसे स्थिर रखा जाए और यदि जाति अहितकर है तो इसे समाप्त कर दिया जाये।

निष्कर्ष

यद्यपि जाति व्यवस्था व्यक्ति, समुदाय तथा समाज की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी व्यवस्था है, परन्तु समय और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ–साथ जाति प्रथा के स्वरूप में अनेक परिवर्तन आ गये है तथा अनेक दोष भी उभर कर सामने आने लगे है। जाति प्रथा का प्रचलन केवल भारत में नहीं बल्कि मिस्र यूरोप आदि में भी अपेक्षाकृत क्षीण रूप में विद्यमान थी।[12]

जाति व्यवस्था पूर्णतः अप्रजातांत्रिक है। यह व्यवस्था समानता की भावनाओं पर कुठाराघात करती है तथा इसने समाज में ऊँच–नीच की भावनाओं को जन्म दिया है। प्रजातंत्र में अपनी उन्नति करने का समान अधिकार होता है, परन्तु जाति प्रथा द्वारा निम्न जातियों के सदस्यों को इस अधिकार से युगो तक वंचित रखा गया। ग्रामीण समाज में जाति प्रथा का महत्व पर मैंने विस्तारपूर्वक चर्चा शोध पत्र में जितनी सम्भावना थी की है। लेकिन इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि हमने जाति व्यवस्था का बिल्कुल उन्मूलन कर दिया हो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था के प्रभाव में कमी अवश्य की है उसमें शिथिलीकरण आया है किन्तु उसका पूर्णतः उन्मूलन होना कठिन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *समाजशास्त्र, डॉ. एल. एस. गजपाल एवं ए. पी. श्रीवास्तव, रामप्रसाद एण्ड संस बाल बिहार, हमीदिया रोड, भोपाल–1, ISBN 978.93.85589.05. 8ए संस्करण–2013, पृ. 8, 9*
2. *वही, पृ. 18, 19*
3. *समाजशास्त्र, डॉ. डी. एस. बघेल, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, संस्करण–2015, पृ. 4–5*
4. *वही, पृ. 11, 12*
5. *वही, पृ. 7, 8*
6. *वही, पृ. 4*
7. *वही, पृ. 24*
8. *वही, पृ. 9, 10*
9. *भारत में नगरीय समाज, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल–संस्करण 2015, पृ. 2*
10. *वही, पृ. 12*
11. *वही, पृ. 18*
12. *स्किल प्रपेसन पृ. 4*